International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 28-04-2026, Accepted: 29-05-2026, Published: 13-06-2026
Volume 12, Issue 2, 2026, Page No. 180-183

वैश्वीकरण और सांस्कृतिक संकट के संदर्भ में रामचरितमानस की प्रासंगिकता

डॉ. राखी सोराठिया
स्वतंत्र अध्येता, यादव कॉलोनी जबलपुर, मध्य प्रदेष, भारत
DOI: https://doi.org/10.66856/ijhr.2026.12.2.12163

सारांश
वैश्वीकरण ने विश्व को आर्थिक और तकनीकी स्तर पर निकट अवश्य लाया है, किन्तु इसके परिणामस्वरूप सांस्कृतिक विखण्डन, उपभोक्तावाद, पारिवारिक मूल्यों का क्षरण तथा नैतिक अस्थिरता जैसी समस्याएँ भी तीव्र हुई हैं। भारतीय समाज भी इस सांस्कृतिक संक्रमण से अछूता नहीं रहा। ऐसी परिस्थिति में भारतीय ज्ञान–परम्परा के उन ग्रन्थों का पुनर्पाठ आवश्यक हो जाता है, जो मानव जीवन को नैतिकता, लोकधर्म और सामाजिक मर्यादा से जोड़ते हैं। गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस इसी दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।
प्रस्तुत शोध–पत्र में वैश्वीकरण से उत्पन्न सांस्कृतिक संकट के संदर्भ में रामचरितमानस की प्रासंगिकता का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में तुलसीदास द्वारा प्रतिपादित लोकमंगल, पारिवारिक आदर्श, सामाजिक समरसता, नैतिक अनुशासन तथा सांस्कृतिक एकात्मता के तत्त्वों का विवेचन किया गया है। शोध से स्पष्ट होता है कि रामचरितमानस केवल धार्मिक ग्रन्थ नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना का जीवन्त दस्तावेज है। वर्तमान समय में यह ग्रन्थ सांस्कृतिक अस्मिता, मानवीय संवेदना तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की पुनर्स्थापना के लिए महत्त्वपूर्ण वैचारिक आधार प्रदान करता है।

मूल शब्दः वैश्वीकरण, सांस्कृतिक संकट, सांस्कृतिक अस्मिता, मानवीय संवेदना, सामाजिक उत्तरदायित्व

इक्कीसवीं शताब्दी में वैश्वीकरण विश्वव्यापी परिवर्तन की प्रमुख प्रक्रिया के रूप में उभरा है। इसने आर्थिक, तकनीकी और संचार सम्बन्धी क्षेत्रों में अभूतपूर्व विस्तार किया, किन्तु इसके साथ ही सांस्कृतिक जीवन पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। बाजारवाद, उपभोक्तावाद और पाश्चात्य जीवन–शैली के तीव्र प्रसार ने पारम्परिक सामाजिक संरचनाओं, पारिवारिक मूल्यों तथा नैतिक मान्यताओं को प्रभावित किया है। परिणामस्वरूप सांस्कृतिक अस्मिता, लोकपरम्परा और सामूहिक जीवन–दृष्टि संकटग्रस्त होती दिखाई देती है। आधुनिक मनुष्य भौतिक उपलब्धियों के बावजूद मानसिक तनाव, सामाजिक विखण्डन और मूल्यहीनता का अनुभव कर रहा है। भारतीय संस्कृति ने सदैव जीवन को धर्म, मर्यादा, करुणा और लोकहित के आधार पर संचालित करने का प्रयास किया है। यहाँ संस्कृति केवल रीति–रिवाजों का समूह नहीं, बल्कि जीवन के नैतिक अनुशासन का आधार मानी गई है। भारतीय महाकाव्यों और भक्तिकाव्य परम्परा ने समाज को सांस्कृतिक दिशा प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी परम्परा में रामचरितमानस का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।
तुलसीदास ने ऐसे समय में रामचरितमानस की रचना की, जब भारतीय समाज राजनीतिक अस्थिरता, सामाजिक विभाजन और सांस्कृतिक संकट से गुजर रहा था। उन्होंने रामकथा के माध्यम से लोकजीवन को नैतिक आधार प्रदान करने का प्रयास किया। मानस में वर्णित आदर्श केवल धार्मिक उपदेश नहीं हैं, बल्कि सामाजिक अनुशासन और मानवीय उत्तरदायित्व की स्थापना के साधन हैं–

"परहित सरिस धरम नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥"

यह चौपाई तुलसीदास की लोकमंगलकारी दृष्टि का मूल आधार प्रस्तुत करती है। यहाँ धर्म का अर्थ कर्मकाण्ड नहीं, बल्कि समाज और मानवता के प्रति उत्तरदायित्व है। वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में जब व्यक्तिवाद और उपभोक्तावाद सामाजिक सम्बन्धों को कमजोर कर रहे हैं, तब रामचरितमानस पारिवारिक मर्यादा, सामाजिक समरसता और सांस्कृतिक एकात्मता की पुनर्स्मृति कराता है। तुलसीदास की दृष्टि भारतीय समाज को केवल अतीत की ओर लौटने का संदेश नहीं देती, बल्कि नैतिक और सांस्कृतिक पुनर्निर्माण का मार्ग भी सुझाती है। प्रस्तुत शोध–पत्र में इसी संदर्भ में रामचरितमानस की समकालीन प्रासंगिकता का विश्लेषण किया गया है।
वैश्वीकरण ने आधुनिक समाज को आर्थिक और तकनीकी स्तर पर तीव्र गति प्रदान की है, किन्तु इसके साथ सांस्कृतिक विखण्डन, नैतिक शिथिलता तथा उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों में भी वृद्धि हुई है। पारिवारिक सम्बन्धों की दुर्बलता, लोकपरम्पराओं की उपेक्षा तथा सामाजिक उत्तरदायित्व में कमी वर्तमान सांस्कृतिक संकट के प्रमुख रूप बनकर उभरे हैं। ऐसी स्थिति में भारतीय सांस्कृतिक ग्रन्थों की पुनर्व्याख्या आवश्यक हो जाती है, जिससे समाज को नैतिक और सांस्कृतिक दिशा प्रदान की जा सके।
रामचरितमानस भारतीय लोकजीवन, सांस्कृतिक चेतना और मानवीय मूल्यों का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। तुलसीदास ने इसमें धर्म, समाज, परिवार और लोकव्यवस्था को मर्यादा तथा उत्तरदायित्व के आधार पर प्रस्तुत किया है। मानस में वर्णित जीवन–दृष्टि व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के स्थान पर सामूहिक हित और नैतिक अनुशासन को महत्त्व देती है—

"कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कर हित होई॥"

यह पंक्ति स्पष्ट करती है कि साहित्य और संस्कृति का वास्तविक उद्देश्य लोकहित होना चाहिए। वर्तमान समय में जब सांस्कृतिक पहचान बाजारवादी प्रभावों के कारण संकटग्रस्त हो रही है, तब रामचरितमानस भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता और सामाजिक समरसता की पुनर्स्थापना के लिए महत्त्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करता है। यही इस शोध की आवश्यकता और औचित्य का मूल आधार है।
भारतीय साहित्यिक परम्परा में संस्कृति, लोकजीवन और नैतिक मूल्यों का प्रश्न सदैव महत्त्वपूर्ण रहा है। वैदिक साहित्य, उपनिषद, रामायण, महाभारत तथा भक्तिकालीन काव्यधारा में समाज को नैतिक अनुशासन और लोककल्याण से जोड़ने का

सतत प्रयास दिखाई देता है। हिन्दी साहित्य में गोस्वामी तुलसीदास ने लोकभाषा के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक चेतना को व्यापक जनसमुदाय तक पहुँचाया।

रामचरितमानस पर अनेक विद्वानों ने धार्मिक, दार्शनिक और सामाजिक दृष्टियों से अध्ययन प्रस्तुत किए हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसीदास को लोकमंगल का कवि माना, जबकि हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उनके साहित्य में सांस्कृतिक समन्वय और मानवीय संवेदना को विशेष महत्त्व दिया। रामविलास शर्मा ने तुलसी साहित्य को भारतीय समाज की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक चेतना से जोड़कर देखा। इन अध्ययनों में तुलसीदास की सामाजिक दृष्टि का विश्लेषण तो मिलता है, किन्तु वैश्वीकरण और सांस्कृतिक संकट के संदर्भ में तुलनात्मक विवेचन अपेक्षाकृत सीमित दिखाई देता है।

समकालीन विमर्श में वैश्वीकरण को केवल आर्थिक प्रक्रिया न मानकर सांस्कृतिक परिवर्तन की शक्ति के रूप में भी देखा गया है। अनेक समाजशास्त्रियों और सांस्कृतिक चिन्तकों ने बाजारवाद और उपभोक्तावाद को सांस्कृतिक अस्मिता के लिए चुनौती माना है। भारतीय समाज में भाषा, लोकसंस्कृति, पारिवारिक संरचना तथा नैतिक मूल्यों पर इसके प्रभावों का अध्ययन भी विभिन्न शोधों में किया गया है। तुलसीदास की सांस्कृतिक दृष्टि को समझने के लिए यह चौपाई विशेष महत्त्व रखती है—

"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥"

यहाँ शासन और समाज के सम्बन्ध को लोकहित के आधार पर परिभाषित किया गया है। तुलसीदास की दृष्टि में संस्कृति का उद्देश्य केवल परम्परा–संरक्षण नहीं, बल्कि न्यायपूर्ण और उत्तरदायी समाज की स्थापना भी है। उपलब्ध साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वैश्वीकरण से उत्पन्न सांस्कृतिक संकट और रामचरितमानस की लोकमंगलकारी दृष्टि के मध्य तुलनात्मक अध्ययन की पर्याप्त सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। प्रस्तुत शोध इसी शोध–अन्तराल को स्पष्ट करने का प्रयास करता है। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य वैष्वीकरण से उत्पन्न सांस्कृतिक संकट के संदर्भ में रामचरितमानस की समकालीन प्रासंगिकता का विश्लेषण करना है। विशेषतः भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता, लोकमंगल, पारिवारिक मर्यादा, सामाजिक समरसता तथा नैतिक जीवन–दृष्टि के तुलसीदासी स्वरूप का अध्ययन करते हुए वर्तमान समाज के लिए उसकी उपयोगिता को स्पष्ट करना इस शोध का प्रमुख उद्देश्य है।

प्रस्तुत शोध में विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक तथा व्याख्यात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन का आधार मुख्यतः ग्रन्थाधारित है, जिसमें रामचरितमानस को प्राथमिक स्रोत के रूप में ग्रहण किया गया है। द्वितीयक स्रोतों के अंतर्गत भारतीय संस्कृति, वैश्वीकरण, सांस्कृतिक अध्ययन तथा तुलसी साहित्य से सम्बद्ध आलोचनात्मक ग्रन्थों और शोध–पत्रों का उपयोग किया गया है। शोध के अंतर्गत रामचरितमानस में निहित लोकमंगल, सांस्कृतिक अस्मिता, पारिवारिक मर्यादा, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा नैतिक अनुशासन से सम्बन्धित प्रसंगों का चयन कर उनका समकालीन सांस्कृतिक संकट के संदर्भ में विश्लेषण किया गया है। साथ ही वैश्वीकरण से उत्पन्न उपभोक्तावाद, व्यक्तिवाद और सांस्कृतिक विखण्डन जैसी प्रवृत्तियों की तुलसीदास की जीवन–दृष्टि के साथ तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की गई है।

वैश्वीकरण आधुनिक युग की ऐसी प्रक्रिया है, जिसने विश्व को आर्थिक, तकनीकी और संचार के स्तर पर परस्पर जोड़ दिया है। उदारीकरण, मुक्त बाज़ार व्यवस्था तथा सूचना–प्रौद्योगिकी के विस्तार ने देशों के बीच व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्पर्क को तीव्र किया। प्रारम्भिक स्तर पर इसे विकास और आधुनिकता का प्रतीक माना गया, किन्तु समय के साथ इसके सामाजिक और सांस्कृतिक दुष्परिणाम भी स्पष्ट होने लगे। वैश्वीकरण ने स्थानीय परम्पराओं, भाषाओं और जीवन–मूल्यों पर गहरा प्रभाव डाला है। भारतीय समाज मूलतः सामूहिक जीवन–दृष्टि, पारिवारिक संरचना और सांस्कृतिक मर्यादाओं पर आधारित रहा है। किन्तु वैश्विक बाज़ारवाद ने जीवन को उपभोग और प्रतिस्पर्धा की मानसिकता से जोड़ दिया। परिणामस्वरूप व्यक्ति का सम्बन्ध समाज और संस्कृति से अधिक भौतिक उपलब्धियों से जुड़ने लगा। पारिवारिक आत्मीयता, गुरु–शिष्य परम्परा, लोकाचार तथा सामुदायिक उत्तरदायित्व जैसी धारणाएँ क्रमशः कमजोर होती गईं।

वैश्वीकरण का सबसे व्यापक प्रभाव सांस्कृतिक अस्मिता पर दिखाई देता है। आधुनिक संचार माध्यमों ने पाश्चात्य जीवन–शैली को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया, जिससे युवा पीढ़ी में अपनी परम्पराओं के प्रति उपेक्षा का भाव बढ़ा। भाषा, वेशभूषा, खान–पान और सामाजिक व्यवहार में तीव्र परिवर्तन दिखाई देने लगे। इस सांस्कृतिक संक्रमण ने व्यक्ति को अपनी जड़ों से दूर कर दिया। रामचरितमानस में तुलसीदास ने समाज को मर्यादा, कर्तव्य और लोकहित के आधार पर संगठित करने का प्रयास किया। वे जीवन को केवल भौतिक उपलब्धि का माध्यम नहीं मानते, बल्कि नैतिक अनुशासन और मानवीय उत्तरदायित्व का क्षेत्र स्वीकार करते हैं–

"धीरज धरम मित्र अरु नारी। आपद काल परखिए चारी॥"

यह चौपाई जीवन के उन आधारों की ओर संकेत करती है, जिन पर समाज की स्थिरता टिकी रहती है। वर्तमान समय में जब सम्बन्ध उपयोगितावादी होते जा रहे हैं, तब तुलसीदास का यह दृष्टिकोण विशेष प्रासंगिक प्रतीत होता है।

वैश्वीकरण ने व्यक्तिवाद को भी प्रोत्साहित किया है। व्यक्ति अपनी सफलता और उपभोग को सर्वोच्च मानने लगा है। इससे सामाजिक समरसता और सामूहिक जीवन–दृष्टि प्रभावित हुई है। तुलसीदास इसके विपरीत समाज को परस्पर सहयोग और लोकहित की भावना से जोड़ते हैं। मानस में बार–बार यह संकेत मिलता है कि समाज की वास्तविक शक्ति पारस्परिक विश्वास और नैतिक आचरण में निहित होती है। इस प्रकार वैश्वीकरण ने जहाँ तकनीकी और आर्थिक विकास को गति दी, वहीं सांस्कृतिक संकट को भी जन्म दिया। ऐसी परिस्थिति में रामचरितमानस भारतीय सांस्कृतिक चेतना, नैतिक अनुशासन और लोकमंगल की पुनर्स्थापना के लिए महत्त्वपूर्ण वैचारिक आधार प्रस्तुत करता है।

रामचरितमानस भारतीय सांस्कृतिक चेतना का ऐसा महाकाव्य है, जिसमें धर्म, समाज, परिवार, राजनीति और लोकजीवन का समन्वित स्वरूप दिखाई देता है। तुलसीदास ने भारतीय संस्कृति को केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे नैतिक आचरण, सामाजिक उत्तरदायित्व और मानवीय संवेदना के आधार पर परिभाषित किया। यही कारण है कि रामचरितमानस भारतीय समाज की सांस्कृतिक स्मृति और लोकचेतना का स्थायी ग्रन्थ बन सका। तुलसीदास की सांस्कृतिक दृष्टि का केन्द्र लोकमंगल है। वे ऐसे समाज की कल्पना करते हैं, जहाँ धर्म का अर्थ कर्मकाण्ड नहीं, बल्कि लोकहित और मर्यादित आचरण हो। श्रीराम का चरित्र इसी सांस्कृतिक आदर्श का प्रतिनिधित्व करता है। वे शक्ति और शासन के स्वामी होते हुए भी विनम्रता, करुणा और कर्तव्य को सर्वोपरि मानते हैं–

"रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाए पर बचन न जाई॥"

यह चौपाई भारतीय सांस्कृतिक जीवन में सत्यनिष्ठा और वचनपालन की प्रतिष्ठा को स्पष्ट करती है। वर्तमान समय में जब सामाजिक सम्बन्ध स्वार्थ और सुविधा पर आधारित होते जा रहे हैं, तब यह दृष्टि नैतिक स्थिरता का आधार प्रस्तुत करती है।

मानस में पारिवारिक जीवन को भी विशेष महत्त्व दिया गया है। पिता–पुत्र, भ्राता–भ्राता, गुरु–शिष्य तथा पति–पत्नी सम्बन्धों को तुलसीदास ने मर्यादा और उत्तरदायित्व से जोड़ा है। राम का वनगमन केवल राजनैतिक घटना नहीं, बल्कि पारिवारिक आदर्श और कर्तव्यपालन का प्रतीक है। भरत का त्याग और भ्रातृप्रेम भारतीय संस्कृति में निस्वार्थ सम्बन्धों की प्रतिष्ठा करता है—

"भरतहि होइ न राजमदु, विधि हरिहर पद पाइ। कबहुँ कि काँजी सीकरनि, छीर सिंधु बिनसाइ॥"

यहाँ तुलसीदास सत्ता के प्रति वैराग्य और भ्रातृनिष्ठा को सांस्कृतिक आदर्श के रूप में प्रस्तुत करते हैं। तुलसीदास की सांस्कृतिक चेतना सामाजिक समरसता पर भी आधारित है। वे समाज को विभाजन और अहंकार से मुक्त देखना चाहते हैं। मानस में निषादराज, शबरी और वनवासी पात्रों के प्रति श्रीराम का व्यवहार सामाजिक समानता और मानवीय सम्मान की भावना को व्यक्त करता है। इससे स्पष्ट होता है कि तुलसीदास की दृष्टि केवल उच्चवर्गीय संस्कृति तक सीमित नहीं, बल्कि लोकजीवन से गहरे रूप में जुड़ी हुई है।

वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में जब सांस्कृतिक पहचान बाजारवादी प्रभावों के कारण कमजोर हो रही है, तब रामचरितमानस भारतीय समाज को अपनी परम्पराओं, नैतिक मूल्यों और सामूहिक जीवन–दृष्टि की पुनर्स्मृति कराता है। तुलसीदास की सांस्कृतिक चेतना अतीत का महिमामण्डन नहीं करती, बल्कि समाज को मानवीय संवेदना, अनुशासन और लोकहित की दिशा प्रदान करती है।

रामचरितमानस में लोकमंगल की भावना सम्पूर्ण सांस्कृतिक संरचना का मूल आधार है। तुलसीदास के लिए धर्म का वास्तविक स्वरूप वही है, जो समाज के व्यापक हित, करुणा और नैतिक उत्तरदायित्व से जुड़ा हो। वे ऐसे समाज की कल्पना करते हैं, जहाँ शासन, परिवार और व्यक्ति—सभी लोकहित के प्रति उत्तरदायी हों। यही कारण है कि रामचरितमानस केवल धार्मिक आख्यान न होकर सामाजिक अनुशासन और मानवीय समरसता का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ बन जाता है। तुलसीदास की दृष्टि में आदर्श शासन वही है, जो प्रजा के सुख और सुरक्षा को सर्वोच्च मानता हो। श्रीराम का चरित्र राजसत्ता को अधिकार नहीं, बल्कि दायित्व के रूप में प्रस्तुत करता है–

"मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कहुँ एक। पालइ पोसइ सकल अंग, तुलसी सहित विवेक॥"

यहाँ शासक की तुलना शरीर के मुख से की गई है, जो स्वयं के लिए नहीं, सम्पूर्ण शरीर के पोषण के लिए कार्य करता है। तुलसीदास शासन की इस लोकहितकारी अवधारणा को सामाजिक समरसता का आधार मानते हैं। मानस में सामाजिक सम्बन्धों का निर्माण करुणा, सहयोग और आत्मीयता पर आधारित है। तुलसीदास जाति, वर्ग और सामाजिक स्थिति से ऊपर उठकर मानवीय गुणों को महत्त्व देते हैं। निषादराज और शबरी के प्रसंग इस दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। श्रीराम का व्यवहार यह स्पष्ट करता है कि सामाजिक सम्मान जन्म से नहीं, बल्कि भाव और आचरण से निर्धारित होता है–

"रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥"

यह चौपाई तुलसीदास की मानवीय दृष्टि का सार प्रस्तुत करती है। यहाँ प्रेम और आत्मीयता को सामाजिक सम्बन्धों का आधार माना गया है। वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में सामाजिक सम्बन्ध उपयोगितावादी होते जा रहे हैं। व्यक्ति का मूल्य उसके आर्थिक स्तर और उपभोग–क्षमता से निर्धारित होने लगा है। इससे सामाजिक विखण्डन और मानसिक एकाकीपन बढ़ा है। तुलसीदास इसके विपरीत समाज को पारस्परिक विश्वास और नैतिक सहयोग से जोड़ते हैं। मानस में लोकमंगल व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर स्थित है। रामराज्य का वर्णन भी इसी समरस सामाजिक व्यवस्था का प्रतीक है। वहाँ भय, अन्याय और शोषण का अभाव दिखाई देता है। समाज के सभी वर्ग अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए सामूहिक जीवन को सुदृढ़ बनाते हैं। तुलसीदास की यह दृष्टि आधुनिक समय में सामाजिक विघटन और सांस्कृतिक संकट के बीच अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती है।

इस प्रकार रामचरितमानस में लोकमंगल और सामाजिक समरसता की अवधारणा भारतीय सांस्कृतिक चेतना की आधारशिला के रूप में उभरती है। तुलसीदास समाज को विभाजन नहीं, बल्कि नैतिक एकात्मता और मानवीय सहयोग के आधार पर संगठित करना चाहते हैं।

वैश्वीकरण ने आधुनिक समाज को आर्थिक और तकनीकी दृष्टि से व्यापक परिवर्तन प्रदान किए हैं, किन्तु इसके साथ सांस्कृतिक जीवन में गहरी अस्थिरता भी उत्पन्न हुई है। उपभोक्तावाद, व्यक्तिवाद और बाज़ार–केन्द्रित जीवन–दृष्टि ने मानवीय सम्बन्धों तथा सांस्कृतिक मूल्यों को प्रभावित किया है। आधुनिक मनुष्य की पहचान अब उसके नैतिक आचरण से अधिक आर्थिक क्षमता और उपभोग की प्रवृत्ति से निर्धारित होने लगी है। परिणामस्वरूप सामाजिक आत्मीयता, पारिवारिक मर्यादा और लोकपरम्पराएँ क्रमशः कमजोर होती जा रही हैं।

वैश्वीकरण का सबसे गंभीर प्रभाव सांस्कृतिक अस्मिता पर दिखाई देता है। आधुनिक संचार माध्यमों और बाज़ारवादी संस्कृति ने स्थानीय भाषाओं, लोककलाओं तथा पारम्परिक जीवन–शैली को हाशिये पर पहुँचा दिया। व्यक्ति अपनी सांस्कृतिक जड़ों से दूर होता गया और जीवन में तात्कालिक सुख तथा प्रदर्शन को अधिक महत्त्व मिलने लगा। इस परिस्थिति में रामचरितमानस भारतीय सांस्कृतिक चेतना की पुनर्स्मृति कराता है। तुलसीदास जीवन को संयम, कर्तव्य और लोकहित के आधार पर व्यवस्थित करते हैं। मानस में भौतिक वैभव की अपेक्षा नैतिक गरिमा को अधिक महत्त्व दिया गया है। श्रीराम राजसत्ता प्राप्त कर सकते थे, किन्तु उन्होंने सत्य और पितृआज्ञा को सर्वोच्च माना–

"पितु बचन मानि चलेउ रघुराई। त्यागि राजु बन बसन सुखदाई॥"

यह प्रसंग त्याग और मर्यादा को सांस्कृतिक आदर्श के रूप में स्थापित करता है। वर्तमान समय में जब सफलता का मापदण्ड भौतिक उपलब्धियाँ बनती जा रही हैं, तब तुलसीदास का यह दृष्टिकोण मूल्य–आधारित जीवन की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

वैश्वीकरण ने व्यक्ति को सामाजिक समुदाय से अलग कर प्रतिस्पर्धा की मानसिकता से जोड़ दिया है। इससे मानसिक तनाव, एकाकीपन और सम्बन्धों में कृत्रिमता बढ़ी है। रामचरितमानस इसके विपरीत सामूहिक जीवन–दृष्टि प्रस्तुत करता है। मानस में परिवार और समाज केवल सामाजिक संस्थाएँ नहीं, बल्कि नैतिक सहअस्तित्व के केन्द्र हैं। राम, भरत, लक्ष्मण और सीता के सम्बन्ध त्याग, विष्वास और उत्तरदायित्व पर आधारित हैं।

तुलसीदास सांस्कृतिक जीवन में भाषा और लोकपरम्परा के महत्त्व को भी स्वीकार करते हैं। उन्होंने संस्कृत के स्थान पर लोकभाषा अवधी में रामचरितमानस की रचना कर भारतीय समाज की सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ किया। यह कार्य सांस्कृतिक लोकतंत्रीकरण का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। आज जब वैश्विक प्रभावों के कारण भारतीय भाषाएँ उपेक्षा का सामना कर रही हैं, तब तुलसीदास की लोकाभिमुख दृष्टि अत्यंत प्रासंगिक हो उठती है। मानस में धर्म का स्वरूप भी कर्मकाण्डप्रधान नहीं है। तुलसीदास धर्म को करुणा, सत्य और लोकहित से जोड़ते हैं–

"धरम न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना॥"

यहाँ धर्म को नैतिक सत्य और आचरण की दृष्टि से परिभाषित किया गया है। वैश्वीकरण के दौर में जब नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन हो रहा है, तब यह दृष्टि समाज को आन्तरिक स्थिरता प्रदान करती है। इस प्रकार रामचरितमानस वैश्वीकरण से उत्पन्न सांस्कृतिक संकट के बीच भारतीय समाज को नैतिक दिशा, सांस्कृतिक आत्मबोध और मानवीय संवेदना का आधार प्रदान करता है। तुलसीदास की दृष्टि आधुनिकता का विरोध नहीं करती, बल्कि उसे मर्यादा, उत्तरदायित्व और लोकहित से संयमित करने की प्रेरणा देती है।

वर्तमान समय का समाज तीव्र परिवर्तन, प्रतिस्पर्धा और सांस्कृतिक संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। तकनीकी उन्नति और भौतिक विकास ने जीवन को सुविधासम्पन्न अवश्य बनाया है, किन्तु इसके साथ मानसिक तनाव, पारिवारिक विघटन, नैतिक अस्थिरता तथा सामाजिक संवेदनहीनता जैसी समस्याएँ भी बढ़ी हैं। आधुनिक मनुष्य बाह्य उपलब्धियों के बावजूद आन्तरिक संतुलन और सांस्कृतिक आत्मबोध के संकट का अनुभव कर रहा है। ऐसी परिस्थिति में रामचरितमानस की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ जाती है। तुलसीदास ने रामचरितमानस में ऐसे जीवन–मूल्यों की स्थापना की, जो व्यक्ति और समाज दोनों को नैतिक दिशा प्रदान करते हैं। श्रीराम का चरित्र सत्ता, शक्ति और वैभव के मध्य भी मर्यादा तथा विनम्रता का आदर्श प्रस्तुत करता है। वर्तमान समय में जब सार्वजनिक जीवन में नैतिक पतन और स्वार्थपरक राजनीति बढ़ रही है, तब राम का चरित्र उत्तरदायी नेतृत्व की प्रेरणा देता है—

"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥"

यह चौपाई शासन को लोकहित और उत्तरदायित्व से जोड़ती है। आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था में भी यही आदर्श प्रासंगिक दिखाई देता है।

समकालीन समाज में पारिवारिक सम्बन्धों का विघटन एक गंभीर समस्या के रूप में उभरा है। व्यक्तिवादी जीवन–दृष्टि ने संयुक्त परिवार, पारस्परिक सहयोग और आत्मीयता को प्रभावित किया है। रामचरितमानस में परिवार को केवल रक्त–संबंध नहीं, बल्कि कर्तव्य, विष्वास और त्याग की संस्था के रूप में चित्रित किया गया है। राम, भरत, सीता और लक्ष्मण के सम्बन्ध पारिवारिक मर्यादा की उच्चतम अभिव्यक्ति हैं।

तुलसीदास सामाजिक समरसता और मानवीय सम्मान को भी विशेष महत्त्व देते हैं। शबरी, निषादराज और वनवासी पात्रों के प्रति श्रीराम का व्यवहार यह स्पष्ट करता है कि समाज की वास्तविक शक्ति करुणा और समानता में निहित होती है। आज जब जातीय, धार्मिक और आर्थिक विभाजन सामाजिक तनाव को बढ़ा रहे हैं, तब मानस की यह दृष्टि सामाजिक सौहार्द का महत्त्वपूर्ण आधार बन सकती है। आधुनिक जीवन में मानसिक अशान्ति और अकेलेपन की समस्या भी तेजी से बढ़ी है। तुलसीदास भक्ति को पलायन नहीं, बल्कि आन्तरिक स्थिरता और आत्मिक संतुलन का माध्यम मानते हैं–

"राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार। तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥"

यहाँ रामनाम को आत्मिक प्रकाश और मानसिक शान्ति का स्रोत बताया गया है। इस प्रकार रामचरितमानस केवल धार्मिक ग्रन्थ नहीं, बल्कि समकालीन समाज के नैतिक, सांस्कृतिक और मानवीय पुनर्निर्माण का महत्त्वपूर्ण आधार है। तुलसीदास की जीवन–दृष्टि आधुनिकता को नकारती नहीं, बल्कि उसे मर्यादा, संवेदना और लोकहित से संयोजित करने की प्रेरणा प्रदान करती है।

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि रामचरितमानस केवल धार्मिक आस्था का ग्रन्थ नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना, लोकमंगल और नैतिक जीवन–दृष्टि का महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक दस्तावेज है। वैष्वीकरण के वर्तमान दौर में जब उपभोक्तावाद, व्यक्तिवाद और सांस्कृतिक विखण्डन जैसी प्रवृत्तियाँ सामाजिक जीवन को प्रभावित कर रही हैं, तब रामचरितमानस मानवीय संवेदना, मर्यादा और सामूहिक उत्तरदायित्व की पुनर्स्थापना का वैचारिक आधार प्रस्तुत करता है।

अध्ययन से यह भी सिद्ध हुआ कि तुलसीदास की दृष्टि अतीत के महिमामण्डन तक सीमित नहीं है। वे समाज को धर्म, करुणा, सत्य और लोकहित के आधार पर संगठित करना चाहते हैं। मानस में परिवार, समाज, शासन और संस्कृति—सभी को नैतिक अनुशासन से जोड़ा गया है। यही कारण है कि श्रीराम का चरित्र केवल धार्मिक प्रतीक न रहकर आदर्श नेतृत्व, उत्तरदायी आचरण और सांस्कृतिक मर्यादा का प्रतिनिधि बन जाता है। तुलसीदास ने लोकभाषा के माध्यम से भारतीय समाज की सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ किया। उन्होंने यह स्थापित किया कि संस्कृति का वास्तविक स्वरूप मानवता, सहिष्णुता और लोककल्याण में निहित होता है–

"सियाराममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥"

यह चौपाई समग्र सृष्टि में एकात्म भाव और सार्वभौमिक दृष्टि की स्थापना करती है। वर्तमान समय में सांस्कृतिक अस्मिता, सामाजिक समरसता और नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए रामचरितमानस अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होता है। यह ग्रन्थ आधुनिक समाज को यह संदेश देता है कि भौतिक प्रगति तभी सार्थक हो सकती है, जब वह मानवीय मर्यादा, सांस्कृतिक चेतना और लोकहित से जुड़ी हो। इस प्रकार रामचरितमानस भारतीय संस्कृति के संरक्षण और समकालीन सामाजिक पुनर्निर्माण का महत्त्वपूर्ण आधारग्रन्थ सिद्ध होता है।

संदर्भ सूची

1. अग्रवाल, वासुदेवशरण. (2018). भारतीय संस्कृति और साहित्य. साहित्य भवन.
2. उपाध्याय, बलदेव. (2019). भारतीय संस्कृति के आधार. चौखम्बा विद्याभवन.
3. गुप्त, गणपतिचन्द्र. (2017). हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास. लोकभारती प्रकाशन.
4. चतुर्वेदी, परशुराम. (2016). गोस्वामी तुलसीदास. हिन्दी साहित्य सम्मेलन.
5. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. (2019). तुलसीदास और उनका युग. राजकमल प्रकाशन.
6. मिश्र, विद्यानिवास. (2017). भारतीयता की पहचान. प्रभात प्रकाशन.
7. रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य. (2018). हिन्दी साहित्य का इतिहास. लोकभारती प्रकाशन.
8. रामविलास शर्मा. (2019). भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश. राजकमल प्रकाशन.
9. वाजपेयी, नन्ददुलारे. (2015). भारतीय साहित्य और संस्कृति. वाणी प्रकाशन.
10. सिंह, नामवर. (2020). इतिहास और आलोचना. राजकमल प्रकाशन.
11. सिंह, बच्चन. (2016). भक्तिकाल और तुलसीदास. विष्वविद्यालय प्रकाशन.
12. त्रिपाठी, विष्वनाथ प्रसाद. (2021). लोकवादी तुलसीदास. वाणी प्रकाशन.
13. तुलसीदास, गोस्वामी. (2023). श्रीरामचरितमानस. गीता प्रेस.
14. गुहा, रामचन्द्र. (2019). भारत में पर्यावरण और समाज. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.